Original Article
ISSN (Online): 2582-7472

ShodhKosh: Journal of Visual and Performing Arts
June 2024 5(6), 1626–1631

CONCEPT OF POET IN SANSKRIT POETICS: FORM AND ANALYSIS (WITH SPECIAL REFERENCE TO NATYASHASTRA AND ABHINAV BHARATI)

संस्कृत काव्यशास्त्र में कवि की अवधारणा : स्वरूप एवं विश्लेषण (नाट्यशास्त्र और अभिनवभारती के विशेष संदर्भ में)

Sumedha Jain [1], Yogesh Sharma [2]

[1] Research Scholar, Department of Sanskrit Philosophy and Vedic Studies, Banasthali Vidyapeeth
[2] Associate Professor, Kalakosh Department, Indira Gandhi National Center for the Arts, New Delhi. (Former Assistant Professor, Department of Sanskrit, Philosophy and Vedic Studies, Banasthali Vidyapeeth)

ABSTRACT

English: In Sanskrit poetics, the concept of poet is a subject of deep and wide consideration. A poet is rich in creative talent who expresses society, nature and human emotions through poetry. In Sanskrit poetics, the poet has been called "Kavyasya Karta" (composer of poetry). “Lokottaravarnananipunakavikarma kavyam” means the work of a poet skilled in describing the world is poetry. The duty of a poet is not only to compose poetry, but he is a multifaceted personality of the society, who encompasses creation, knowledge and society together. The concept of poet in Sanskrit poetics is a deep and multidimensional subject, which has been defined in detail by the ancient scholars in their texts. A poet is one who is adept in the art of expressing emotions and can reach the depth of meaning through words. The concept of poet in Sanskrit poetics has not been limited to just a verse-maker, but it emerges as a visionary who coordinates creativity, classical knowledge and spiritual wisdom and whose main objective is to create such literature that uplifts the society through education, entertainment (Vinod) and Rasanubhuti.

Hindi: संस्कृत काव्यशास्त्र में कवि की अवधारणा एक गहन और व्यापक चिंतन का विषय है। कवि सृजनशील प्रतिभा का धनी होता है जो समाज, प्रकृति और मानवीय भावनाओं को काव्य के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। संस्कृत काव्यशास्त्र में कवि को "काव्यस्य कर्ता" (काव्य का रचयिता) कहा गया है। “लोकोत्तरवर्णनानिपुणकविकर्म काव्यम्” अर्थात् लोकोत्तरवर्णन में निपुण कवि का कर्म काव्य है। कवि का कर्तव्य केवल काव्य रचना करना ही नहीं है, बल्कि वह समाज का एक बहुमुखी व्यक्तित्व है, जो सृजन, ज्ञान और समाज को एक साथ समेटे हुए है। संस्कृत काव्यशास्त्र में कवि की अवधारणा एक गहन और बहुआयामी विषय है, जिसे प्राचीन आचार्यों ने अपने ग्रंथों में सविस्तार परिभाषित किया है। कवि वह है जो भावों को व्यक्त करने की कला में निपुण हो और शब्दों के माध्यम से अर्थ की गहराई तक पहुँच सके। संस्कृत काव्यशास्त्र में कवि की अवधारणा केवल छंद-रचनाकार तक सीमित नहीं रही है, बल्कि यह एक ऐसे दृष्टा के रूप में उभरती है जो सृजनात्मकता, शास्त्रीय ज्ञान और आध्यात्मिक प्रज्ञा का समन्वय करता है तथा जिसका प्रमुख उद्देश्य ऐसे साहित्य की रचना करना है जो शिक्षा, मनोरंजन (विनोद) और रसानुभूति के माध्यम से समाज को उन्नत करे। अत: कवि केवल कलात्मक रचनाओं का स्रष्टा नहीं है, बल्कि एक नैतिक और आध्यात्मिक मार्गदर्शक भी है। उसका दायित्व समाजिक मूल्यों को बनाए रखना और उनका प्रचार करना है, साथ ही मानदंडों को चुनौती देना और परिवर्तन को प्रेरित करना है। वह परंपरा और आधुनिकता के बीच सेतु निर्माण तथा सांस्कृतिक धरोहर को बनाए रखते हुए समकालीन मुद्दों का सामना करता है ।

DOI
10.29121/shodhkosh.v5.i6.2024.4913

Funding: This research received no specific grant from any funding agency in the public, commercial, or not-for-profit sectors.

Copyright: © 2024 The Author(s). This work is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.

With the license CC-BY, authors retain the copyright, allowing anyone to download, reuse, re-print, modify, distribute, and/or copy their contribution. The work must be properly attributed to its author.

OPEN ACCESS

1. प्रस्तावना

संस्कृत काव्यशास्त्र में कवि की अवधारणा एक गहन और व्यापक चिंतन का विषय है। कवि सृजनशील प्रतिभा का धनी होता है जो समाज, प्रकृति और मानवीय भावनाओं को काव्य के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। संस्कृत काव्यशास्त्र में कवि को "काव्यस्य कर्ता" (काव्य का रचयिता) कहा गया है। "लोकोत्तरवर्णनानिपुणकविकर्म काव्यम्" अर्थात् लोकोत्तरवर्णन में निपुण कवि का कर्म काव्य है। कवि का कर्तव्य केवल काव्य रचना करना ही नहीं है, बल्कि वह समाज का एक बहुमुखी व्यक्तित्व है, जो सृजन, ज्ञान और समाज को एक साथ समेटे हुए है। संस्कृत काव्यशास्त्र में कवि की अवधारणा एक गहन और बहुआयामी विषय है, जिसे प्राचीन आचार्यों ने अपने ग्रंथों में सविस्तार परिभाषित किया है। कवि वह है जो भावों को व्यक्त करने की कला में निपुण हो और शब्दों के माध्यम से अर्थ की गहराई तक पहुँच सके। संस्कृत काव्यशास्त्र में कवि की अवधारणा केवल छंद-रचनाकार तक सीमित नहीं रही है, बल्कि यह एक ऐसे दृष्टा के रूप में उभरती है जो सृजनात्मकता, शास्त्रीय ज्ञान और आध्यात्मिक प्रज्ञा का समन्वय करता है तथा जिसका प्रमुख उद्देश्य ऐसे साहित्य की रचना करना है जो शिक्षा, मनोरंजन (विनोद) और रसानुभूति के माध्यम से समाज को उन्नत करे। अतः कवि केवल कलात्मक रचनाओं का स्रष्टा नहीं है, बल्कि एक नैतिक और आध्यात्मिक मार्गदर्शक भी है। उसका दायित्व समाजिक मूल्यों को बनाए रखना और उनका प्रचार करना है, साथ ही मानदंडों को चुनौती देना और परिवर्तन को प्रेरित करना है। वह परंपरा और आधुनिकता के बीच सेतु निर्माण तथा सांस्कृतिक धरोहर को बनाए रखते हुए समकालीन मुद्दों का सामना करता है ।

संस्कृत में 'कवि' शब्द 'कु' धातु से व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ है-'देखना' या 'सृजन करना' ।अत: 'कवि' का शाब्दिक अर्थ है "द्रष्टा" या "सर्जनकर्ता"। कवि' शब्द की व्युत्पत्ति और परिभाषा संस्कृत के विभिन्न ग्रंथों और शास्त्रों में विस्तृत रूप से की गई है। काव्यमीमांसा के अनुसार कवि का अर्थ होता है - वर्णन करने वाला ।[i] मम्मट के अनुसार लोकोत्तर वर्णना में निपुण कवि का कर्म'काव्य' कहलाता है।[ii] अतः वर्णननिपुणता कवि का प्रमुख धर्म माना गया है । कवि के कर्म को काव्य संसार की उपाधि दी गयी तथा कवि को काव्य संसार का प्रजापति स्रष्टा माना गया है । कवि जिस काव्य-संसार का स्रष्टा होता है वह उसका ही परिकल्पित जगत होता है । कवि के इसी परिकल्पित जगत की सर्जना प्रक्रिया और उसके गुणों का भरतमुनि और अभिनवगुप्त जैसे आचार्यों ने क्रमशः नाट्यशास्त्र एवं अभिनवभारती में गहन चिंतन प्रस्तुत किया है ।

अपारे काव्यसंसारे कविरेकः प्रजापतिः ।
यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते ॥

प्रस्तुत उक्ति कवि व उसके काव्य के संबंध में उल्लेखनीय है । कवि की रचना का अपना लोक होता है । वह अपनी कवित्व शक्ति से समस्त संसार को रमणीय बना देता है । उसके मस्तिष्क में अंतर्निहित चिरनवीन कल्पनाएँ एवं सौंदर्यानुभूति की क्षमता भिन्न रूपों वाली होते हुए भी एकता के सूत्र में बंधकर नवरसरुचिर काव्य का निर्माण करती है । कवि अपने स्वभाव-संस्कार, अध्ययन तथा जीवन-जगत की वस्तु-स्थिति का साक्षात्कार करने वाली अंतर्दृष्टि से प्रेरित होकर रचना-कर्म की ओर प्रेरित होता है । उसकी काव्य-चेतना विविध नामरूपों व उसके कार्य-व्यापारों में संक्रमित होती हुई सर्जना के समय विषय-विशेष पर संकल्पित हो केन्द्रित होती है जिसके माध्यम से कवि उसके मर्म का विभिन्न रूपों में उद्घाटन करता है । वह एक साधक की भांति वस्तु के अंतर्निहित तत्वों, विचित्रभावों को तत्स्वरूप से जानकर उसका लोकोत्तर वर्णन करता है । कवि की अन्तः अनुभूतियाँ प्रथमतः कवि हृदय में आकर अभिव्यक्ति का मार्ग ग्रहण करती हैं । अतः वह इन विषय-वस्तुओं का अपनी प्रतिभा शक्ति से सर्वप्रथम दर्शन करता है तत्पश्चात वर्णन – "जो कारण सामग्री के लेश के बिना, अपूर्व वस्तु को उत्पन्न करता है और पत्थर के समान नीरस जगत को सारवान बना देता है तथा क्रम से प्रख्या (कवि की प्रतिभा) और उपाख्या(वचन) के प्रसर से सुभग होता हुआ (वस्तुजगत् को) भासित करता है वह कवि और सहृदय द्वारा आख्यात सरस्वती का तत्व काव्य विजयी है"।[iii] कवि वही होता है जो सब कुछ देख सकता है वह त्रिकालदर्शी है, जो वस्तु को अनावृत्त कर उसके मूल तक पहुँचता है । वह वैदिक संदर्भ "हिरण्यमयेण पात्रेण सत्यस्यपिहितं मुखं ततत्वं पुषन्नपावृणु सत्यधर्माया दृष्ट्ये" उक्ति को चरितार्थ करता हुआ केवल वस्तु के बाह्य रूप का ही अवलोकन नहीं करता है अपितु उनकी सारभूत आत्मा का भी साक्षात्कार करता है । पाश्चात्य कवि एवं आलोचक टी एस एलिएट भी काव्य के संबंध में अपना मत प्रस्तुत करते हुए कहते है की कविता कोई नियत वस्तु नहीं है लेखक जो सोचता है काव्य का अर्थ उससे अधिक भी हो सकता है और उससे दूरवर्ती भी हो सकता है| एलिएट का स्पष्ट मानना है कि यह अन्त:प्रेरणा से उद्भूत है और स्वच्छन्द है|[iv] अतएव किसी वस्तु के अंतर्निहित तत्व का ज्ञान हुए बिना वह कवि नहीं बन सकता इसलिए कवि के लिए दर्शन आवश्यक है । परंतु दर्शन शक्ति अथवा द्रष्टा होने पर भी कोई कवि तब तक कवि नहीं बन सकता जब तक वह अपने प्रातिभ चक्षु से अनुभूत विषय को अपनी लावण्यमयी वाणी में अलंकृत कर लोक के समक्ष प्रस्तुत नहीं कर देता है ।महर्षि वाल्मीकि के उदाहरण द्वारा भी इस कथन को समझा जा सकता है ।ऋषि, द्रष्टा तथा सम्पूर्ण ज्ञान के ज्ञाता होते हुए भी जब तक महर्षि वाल्मीकि ने छन्दोमयी वाणी में अपने ज्ञान को काव्य रूप में प्रस्तुत नहीं किया तब तक उन्हें कवि की संज्ञा प्राप्त नहीं हुई ।[v] कहने का तात्पर्य यह है कि जब हृदय के भाव रससिन्धु में इतने अधिक भर जाय तो उनका प्रस्फुटन जिह्वा पर अवश्य हो जाता है और भाव का यह प्रस्फुटन शब्द और छन्द में आकार लेकर अस्तित्व में आ जाता है । हम कह सकते हैं कि कविता का प्रस्फुरण किसी नियोजित रूप में नहीं होता । विशुद्ध कविता हृदय का भाव पूर्ण चित्र है, किसी प्रशस्ति, तुकबंदी, अथवा विलासपूर्ण प्रहसन नहीं है । कविता हृदय की मूक भावाभिव्यंजना की शब्दमय प्रतिकृति है जो हृदय की अनन्त गहराइयों से रस का सागर लेकर बाहर निकलती है । इसी रस - सागर में स्नान कर लोग आप्लावित होते हैं । अतः कहा जा सकता है कि दर्शन और वर्णन के सामंजस्य से ही सत्कवि का उन्मेष होता है । आचार्य अभिनवगुप्त भी वर्णना के योग से ही कवि की संज्ञा स्वीकार करते हैं ।[vi] अतएव कवि रस एवं

भावों से परिपूर्ण जगत् के विषयों का लोकोत्तर वर्णनकर्ता सिद्ध होता है जिसकी ललित पदावली सहृदयों के हृदय में अखण्ड आनंद की अनुभूति का हेतु बनती है ।

कवि कवित्व संज्ञा से विभूषित प्रतिभा शक्ति सम्पन्न प्रजापति तथा त्रैलोक्य का निर्माण करने वाले शिव(शम्भू) के समान स्वरूप का धारक है जो अपने काव्य में स्वयं की कल्पना शक्ति से सम्पूर्ण जगत् के अपूर्व तत्वों का समावेश कर लेता है ।[vii]तथा ऐसे काव्य की सर्जना करता है जिसे अनेक बार पढ़ने पर भी आनन्द की अनुभूति हुआ करती है।[viii] ब्रह्मा की तरह लोक को केन्द्र में रखकर सदैव लोकहित के लिए सन्नद्ध रहकर काव्य रचना करना कवि का प्रमुख कर्त्तव्य है ।काव्य रूपी जगत् का कर्ता कवि सभी नाट्य या काव्यशास्त्रीय तत्वों में निष्णात होता है | कवि की सृष्टि ब्रह्मा की सृष्टि से सर्वथा भिन्न व अलौकिक है । वह दिखाई देने वाले पदार्थ को एवं ब्रह्मा की सृष्टि में नियन्त्रित सभी पदार्थ को सर्वथा नवीन रूप में लाकर उपस्थित कर देता है । ब्रह्मा की सृष्टि कारणों में नियन्त्रित होती है परन्तु कवि सृष्टि किन्हीं भी कारणों से बधीं हुई नहीं है । कवि स्वतन्त्र है वह जैसी चाहे रचना कर सकता है । अतः ब्रह्मा की सृष्टि अपूर्व नहीं होती परन्तु कवि की सृष्टि अपूर्व तथा सर्वथा नूतनता को धारण किए हुए है । वह अपनी सृष्टि में सबको रसयुक्त कर देने का सामर्थ्य रखता है । प्रत्यक्ष दिखाई देने वाला जगत् जो कि नीरस एवं कठोर है उसे अपनी रस-सम्पत्ति के द्वारा सारवान एवं रस युक्त करता है । कवि की यह अपूर्वता, सरसता और हृद्यता कविसहृदयाख्य सरस्वतीतत्त्व रूप 'काव्य' में प्राप्त होती है । कवि, शाश्वत एवं चिरन्तन सांस्कृतिक परम्परा का कुशल प्रस्तौता, लोकानुवर्तनीय मार्ग का प्रकाशक होता हुआ मूलतः देश और काल की सीमा से मुक्त होकर लोक को अपने काव्य-स्फुरण का आधार बनाकर काव्य के माध्यम से अपने मानसिक लोक की अभिव्यक्ति करता है । एक साधक की भाँति ध्यानावस्थित होकर आत्मगत भावों को स्वयं की प्रतिभा शक्ति से प्रकाशित करता है एवं काव्य के नियमों का ज्ञान प्राप्त कर कला सृजन में प्रवृत्त होता है। कवि में काव्यसर्जना के लिए कल्पनाशक्ति, अनुभूति, अभिव्यक्ति की योग्यता एवं मनोवैज्ञानिक कौशल जैसे गुण अपेक्षित हैं । संस्कृत काव्यशास्त्र में कवि के स्वरूप, प्रकार, काव्य-रचना प्रक्रिया एवं उसको काव्य रचना में प्रेरित करने वाली प्रतिभा को उसका एक महत्वपूर्ण अंग माना गया है, जिसके बल पर ही कवि काव्य रचना में प्रवृत्त होता है । इन सभी विषयों को आधार बनाकर विभिन्न आचार्यों ने स्वकीय ग्रन्थों में अपने मत प्रस्तुत किए है । आद्याचार्य भरतमुनि एवं अभिनवगुप्त भी काव्य सर्जना की प्रक्रिया के कारक कवि की साहित्यिक मीमांसा अनिवार्य मानते हैं । काव्य-सर्जना कवि के अन्तर्मन का वह प्रतिबिम्बित रूप है जिसमें उसका सम्पूर्ण मानस व्यापार सहज ही दृष्टिगोचर होता है । निरन्तर परिवर्तनशील जगत के अभिनव परिवर्तन से कवि की संवेदना एवं अनुभूति निरन्तर विकास को प्राप्त होती हुयी शब्दार्थ के माध्यम से काव्य में प्रस्फुटित होती है ।

2. कवि के गुण

काव्य सर्जना के लिए भी कवि को सम्पूर्ण शास्त्रों का ज्ञाता होना आवश्यक है । आचार्य भरतमुनि ने कवि को काव्य रचना के लिए सभी शास्त्रों जैसे काव्यशास्त्र, छन्दशास्त्र, व्याकरणशास्त्र आदि सभी विद्याओं एवं कलाओं का ज्ञाता माना है। नाट्य या काव्य की रचना करने वाला कवि कल्पना के द्वारा कथावस्तु का निर्माण कर उसके अनुसार पात्रों व उनके नामकरण[ix] एवं रस व भावों की अभिव्यक्ति के लिए उचित पदावली[x] आदि का चयन करता है। काव्य रचना करते समय जहाँ जिस रस-भाव की अपेक्षा होती है वहाँ उन्हीं रसों का उचित प्रयोग कवि को करना चाहिए। क्योंकि सहृदय सामाजिक भी अपनी मनोवृत्तियों के अनुसार उस रस भाव को ग्रहण कर रसानुभूति करता है ।परंतु कवि निबद्ध रसानुभूति के लिए यह भी आवश्यक है कि वह अनुभूति लोकहितकारी प्रधान फल को प्रस्तुत करने वाली हो ।[xi] कवि को भाषा का उत्कृष्ट ज्ञान होना चाहिए। भरतमुनि एवम् अभिनवगुप्त के अनुसार, भाषा का चयन और उसका उचित उपयोग ही कवि की प्रतिभा को दर्शाता है। अभिनवगुप्तपादाचार्य के अनुसार काव्य की रचना करने के लिए और सहृदयों को अभीष्ट अर्थ की प्राप्ति कराने हेतु कवियों को कल्पना के माध्यम से समस्त काव्याङ्गो का विभाग करना चाहिये ।[xii] सबसे पहले कवि को काव्य के निर्माण में छन्दों को सम्मिलित करते हुए उन्हें लक्षण की योजना करनी चाहिये, तद्नन्तर अलंकारों एवं गुणों का निवेश काव्य रचना में करते हुए दशरूपकों का सम्यक् विभाग कर काकु, स्वर आदि वाचिक अभिनयों की योजना प्रबन्ध निर्माण में करनी चाहिये ।[xiii] इन्हीं चरणों का प्रयोग करता हुआ विद्वान् प्रबन्ध रचना रूपी मार्ग को पार कर महाकवि के पद को प्राप्त करने का अधिकारी बन सकता है ।[xiv] कवि की कल्पना शक्ति ही उसे सामान्य मनुष्य से अलग करती है। जिसके माध्यम से वह एक नए संसार की रचना करता है, जो वास्तविकता से भी अधिक जीवंत और सार्थक होता है। कवि का मुख्य उद्देश्य रस निष्पत्ति है। रस का संचार कवि की शब्द शक्ति और भावनाओं के समन्वय पर निर्भर करता है। उसे इस प्रकार रचना करनी चाहिए कि पाठक उसके भाव में डूब जाए और रस का अनुभव कर सके। इसलिए आवश्यक है की कवि को सर्जना करते समय देश, काल और रस के अनुसार सभी अंगों का सम्यक रूपेण निर्वहण करना चाहिए ।[xv] जिसके उपरान्त कवि का संवेदनशील हृदय प्राणियों के सुखदुखादि का साक्षात्कार कर हृदय संवाद एवं तन्मयीभवन के द्वारा साधारणीकृत अनुभूति का अनुभव करता है । यही संवित काव्य का उत्स है । अतः अभिनवगुप्त के अनुसार काव्य में अभिव्यक्त अनुभूति निर्वैयक्तिक तथा अलौकिक होती है । यही कारण है कि उसमें सहृदय के चित्त में भी रसानुभूति जाग्रत करने का सामर्थ्य होता है । अतः काव्य इसी रस की अभिव्यंजना कही जाती है जिसके माध्यम से सहृदय भी कविगत रससंवित् का साक्षात्कार करने में समर्थ होता जाता है ।[xvi]

3. काव्य प्रयोजन

काव्य का मुख्य उद्देश्य सहृदय के हृदय में लोकोत्तर अलौकिक आनंदमय रस का उन्मीलन करना होता है । अतः दृश्य या श्रव्य दोनों ही काव्यों के भेदों का मूल उद्देश्य 'सकलप्रयोजनमौलिभूतम्' को चरितार्थ करना है । जहां श्रव्य काव्य में सहृदय सामाजिक वर्णित विषय के साथ अपनी कल्पना के माध्यम से मानस प्रत्यक्ष करता है वहीं नाट्य या दृश्य काव्य में उसका संबंध वर्णित वस्तुओं के साथ प्रत्यक्ष रूप में होता है । जिस प्रकार से नाट्य में समग्र घटनाओं का वर्णन नाटककार दर्शकों के सामने विविध पात्रों की वेषभूषा उनके आकार उनकी भाव भंगिमाओं को पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत कर भावाभिव्यक्ति कराते है । उसी प्रकार से कवि श्रव्य काव्य में शब्दार्थों के माध्यम से तथा दृश्य काव्य में नट की सहायता से करता है।

कवि अपने भावों की अभिव्यक्ति लोक मंगल और आनंद के लिए ही करता है । उसके भाव प्रतिभाशक्ति के अनुकूल ही अभिव्यक्ति को प्राप्त करते हैं । अतएव प्रतिभा शक्ति के द्वारा ही कवि की सर्जनात्मक अनुभूति वाणी प्राप्त करती है जहाँ उसके समस्त ज्ञान तथा भाव रसमय हो जाते हैं । विभिन्न आचार्यों के मतानुसार काव्य की आत्मा रस अथवा रसविष्ट पदावली ही काव्य है । कवि संसार की समस्त वस्तुओं के साथ तादात्म्य स्थापित कर उन भावों को व्यक्त करता है जिनका अनुभव करके सहृदय पाठक भी आनंदानुभूति को प्राप्त होते है । आचार्य अभिनवगुप्त भी रस चर्वणा को कवि की अभिव्यक्ति तथा रसबन्ध काव्य की सर्जना कवि का मुख्य व्यापार मानते है ।[xvii] यही रसाभिव्यक्ति कवि के भावों की अभिव्यक्ति है । रस चर्वणा में कवि का मन पूर्व की लौकिकादि भावनाओं को अतिक्रांत कर विगलित वेद्यांतर की अवस्था को प्राप्त करता है । जिस अवस्था में कवि अपने रचना कर्म में प्रवृत्त होता है उस समय वह समस्त ज्ञेय पदार्थों से दूर होता है, उसे तीनों कालों व किसी भी क्रिया का भान नहीं रहता तथा वह अपने अन्तर्मन की शक्तियों से अज्ञात वस्तुओं का एवं अपनी अनुभूति का भी अपूर्व चित्रण करता है। काव्यसर्जना कवि की सर्जनात्मक प्रतिभा में निहित निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है । आचार्य अभिनवगुप्त का मानना है की रसावेशवैशद्य एवं सौंदर्यानुभूति के धरातल पर उतरकर ही प्रतिभा नवसर्जना का अपूर्व संसार निर्मित करती है ।[xviii] अतः काव्यसर्जना के प्रस्फुटन के लिए पहले कवि के हृदय में रस की उत्कंठा होनी चाहिए । रसाविष्ट कवि की प्रतिभा रस से शासित होकर नूतन अर्थों को खोजती है तथा तन्मयता को प्राप्त कर नवसर्जना करने में समर्थ होती है । अतः जिस प्रकार बीज से अभिनव पदार्थ की स्फूर्ति होती है वैसे ही प्रतिभा के द्वारा भी नवीन पदार्थों की सृष्टि होती है । भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र[xix] में एवं आचार्य अभिनवगुप्त ने नाट्यशास्त्र की टीका में इस सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए कहा की बीज रूपी कविगत रस से वृक्ष रूपी काव्य की उत्पत्ति होती है । जिसमें की पुरुष अभिनयादी रूप होकर नट का व्यापार होते है तथा फल, सामाजिक का रसास्वादन है । अतः उनके मतानुसार बीज से लेकर फलोत्पत्ति तक की प्रक्रिया कविगत अनुभूति की काव्य के माध्यम से सहृदय के रसास्वादन की प्रक्रिया है।[xx] अतः कहा जा सकता है की काव्य कविगत साधारणीभूत अनुभूति है तथा यही संवित् परमार्थ रस है । अर्थात् कवि की यह अभिव्यक्ति उसके अलौकिक काव्यात्मक व्यक्तित्व से सम्बद्ध होती है न कि उसके लौकिक व्यक्तित्व से संबंध रखती है । इस प्रकार से भरतमुनि एवं अभिनवगुप्त ने **न भावहीनोऽस्ति रसो न भावो रसवर्जितः (नाट्यशास्त्र ६/५)** कहकर काव्य को कवि के भावोद्गार व रस की निष्पत्ति के मञ्जुल सामंजस्य से ही काव्य की उत्पत्ति को स्वीकार किया है। आद्याचार्य भरतमुनि ने **'कवेरन्तर्गतं भावं भावयन्भाव उच्यते' (नाट्यशास्त्र ३४ /८)** के द्वारा इसी सत्य की ओर संकेत किया है । जब तक कवि हृदय भावों से ओत-प्रोत नहीं हो जाता तब तक रसमय काव्य का उदय नहीं हो सकता। कवि हृदय में प्रस्फुटित भावों का शब्दों के माध्यम से प्रकट होना ही वस्तुतः काव्य है ।

4. कवि की रचनात्मक प्रक्रिया

दिव्य प्रेरणा महान कविता के निर्माण के लिए आवश्यक है, जिसे कि कठोर अनुशासन और अभ्यास द्वारा पूरित किया जाना चाहिए। कवि को अपने शिल्प को निरंतर परिष्कृत करना चाहिए, जो रूप और सामग्री, ध्वनि और अर्थ के बीच एक आदर्श संतुलन प्राप्त करने का प्रयास करता है। कवि और सहृदय दोनों ही काव्य के अन्योन्याश्रित आधारस्तम्भ है । अभिनवगुप्त भी कवि व सहृदय दोनों को एक ही सारस्वत तत्व काव्य का अंग स्वीकार करते हैं । 'कवेर्भावः काव्यम्' कवि का भाव 'काव्य' कहलाता है| काव्य का परम प्रयोजन होता है - 'सद्यः परनिर्वृतये ' शीघ्र ही सहृदय को आह्लाद की अनुभूति कराना । कवि अपने प्रातिभ चक्षु के द्वारा मूर्त-अमूर्त का ज्ञान कर नवीन वस्तुओं का शब्दार्थ के माध्यम से उन्मीलन करता है, अपने मानसिक व्यापार को बाह्य रूप देने के लिए सर्जनात्मक व्यापार में प्रवृत्त होता है तो सहृदय कवि के द्वारा वर्णित काव्यचित्रण में अंतर्निहित आनंद का आस्वादन करता है । अतः अपनी वाणी के द्वारा अपने भावों एवं संवेदनाओं को संश्लिष्ट कर देता है । परंतु कवि का रसमय काव्य भी तभी सार्थक होता है जब वह सहृदय के हृदय में यथावत आनन्दानुभव में समर्थ हो । तथा सहृदय सामाजिक भी कवि की मूल अनुभूतियों को पाये बिना, उसके प्रातिभ आवेशों को अपने में प्रस्फुटित किए बिना रसानुभूति में समर्थ नहीं होता है ।[xxi]

5. काव्य प्रेरणा

कवि की काव्य रूप में प्रस्फुटित रमणीय वाणी उसकी प्रतिभा का ही परिणाम है । किसी भी काव्य की रचना के लिए कविनिहित प्रेरणा आवश्यक तत्व है जिसकी सहायता से कवित्व शक्ति परिष्कृत एवं प्रस्फुटित होती है । अपनी प्रेरणा शक्ति के द्वारा कवि इस प्रकार के काव्यों की सृष्टि करता है जो नवरसरुचिर, अनन्यपरतन्त्र, नियतिकृतनियमरहित और परमाह्लादक है एवं अपनी रस-निस्यंदता के साथ उन्हें विश्वव्यापी कीर्ति और प्रीति प्रदान

करने में समर्थ है । कवि का मानसबिम्ब उसके काव्य में उसकी प्रेरणा शक्ति के द्वारा ही प्रतिबिम्बित होता है । कवि की यह प्रेरणा शक्ति उसके पूर्वजन्मों के परिपाक से उत्पन्न संस्कार के रूप में उसके हृदय में स्थित रहती है । अभिनवगुप्त ने प्रतिभा को कवि के लिए काव्य का प्रमुख साधन माना है। प्रतिभा वह साधिका सृष्टि है जिसके बल पर कवि अलौकिक नूतन वस्तुओं कि सृष्टि करता है ।[xxii] प्राचीन भारतीय कवियों की परंपरानुसार संस्कृत काव्य लेखन की प्रक्रिया में सर्वप्रथम मंगलाचरण के रूप में वाग्देवी सरस्वती की वन्दना तथा नाटकों में नान्दी की योजना की जाती है जो कि कवि प्रेरणा में निहित दैवी सिद्धान्त की पुष्टि करते हैं ।आचार्य अभिनवगुप्त ने भी लोचन में मंगलाचरण के माध्यम से कवि को सरस्वती के 'कविसहृदयाख्य तत्व' रूप में प्रस्तुत किया है । कवि कारण सामग्री के लेश के बिना अपूर्ववस्तु को उत्पन्न करता है तथा पत्थर कि तरह नीरस वस्तु को भी रस से सारवान बना देता है तथा अपनी प्रतिभा के माध्यम से काव्य को सहृदय संवेद्य बनाता है ।[xxiii] काव्यशास्त्रीय आचार्यों ने प्रतिभा को भिन्न-भिन्न प्रकार से परिभाषित करते हुए प्रतिभा को शक्ति और प्रज्ञा का पर्यायवाची माना है । आचार्य अभिनवगुप्त ने प्रतिभा को भगवान शंकर का तृतीय नेत्र कहा है जिसकी विवृत्ति से कवि त्रिकालद्रष्टा बनकर सृष्टि के सम्पूर्ण रहस्यों का उद्घाटन का सामर्थ्य प्राप्तकर अपूर्वस्तु के निर्माण में समर्थ होता है । यहाँ अभिनवगुप्त ने अपने शैव दर्शन के सिद्धांतो के अनुसार प्रतिभा रूप शिवाख्या परा शक्ति की वंदना की है । शिव प्रकाश रूप है तथा शक्ति विमर्श रूप । विमर्श के द्वारा ही प्रकाश का अनुभव हुआ करता है बिना विमर्श के प्रकाश संभव नहीं होता है । प्रतिभा इसी विमर्श की अपर संज्ञा है । शैव दर्शन के अनुसार परमशैव कूटस्थ तत्व है परंतु शिव की परा शक्ति उन्हें आयतन बनाकर उनमें विश्रांत रहती है तथा अपनी उन्मीलन शक्ति से सम्पूर्ण विश्व का उन्मीलन क्षण भर में कर देती है । वैसे ही कवि की प्रतिभा शक्ति नित्य अपने आयतन कवि हृदय में विराजति हुए अपनी शक्ति से अपूर्व ही रसमय संसार की सृष्टि कर देती है ।[xxiv] कवि की इस शक्ति अर्थात प्रतिभान् के सामर्थ्य से ही वह वर्णनीय वस्तु के संबंध में नवीन विषय का उल्लेख कर पाता है ।[xxv] अर्थात् अपने हृदय मंदिर में निरंतर प्रकाशमान प्रतिभा रूप वाग्देवता के अनुग्रह से प्राप्त नानाप्रकार के लोकोत्तर अर्थों की रचना करने की शक्ति रखने वाले प्रजापति के समान जगत की रचना में कवि के लिए नाट्य की वर्जनीयता का प्रश्न उठाया ही नहीं जा सकता है ।[xxvi] संक्षेप रूप में कवि की रचनात्मक प्रक्रिया को इस प्रकार से समझा जा सकता है – सर्वप्रथम कवि किसी दैवीय प्रेरणा या अनुभूति के माध्यम से अपनी रचना का प्रारम्भ करता है। यह प्रेरणा उसकी आंतरिक संवेदनशीलता से उत्पन्न होती है । प्रेरणा के बाद कवि अपने विचारों का परिष्करण करता है और उन्हें एक निश्चित रूप में ढालता है। यह चरण उसकी बुद्धि और ज्ञान का प्रदर्शन होता है। विचारों के परिपक्व होने पर कवि उन्हें शब्दों के माध्यम से व्यक्त करता है। यहाँ पर भाषा और शब्द चयन की कला महत्वपूर्ण होती है। अन्त में अभिव्यक्ति के बाद कवि अपनी रचना का पुनः मूल्यांकन करता है और आवश्यक संशोधन करता है। यह अंतिम चरण उसकी रचना को संपूर्ण और प्रभावी बनाता है।अतएव कहा जा सकता है कि प्रतिभा शक्ति के स्थित रहते ही कवि काव्यजगत की सृष्टि करता है तथा काव्य रचना को कवि के संवेगों का प्रतिफलन कहा जा सकता है, जिसके अभाव में कवि निर्मिति नहीं हो सकती है ।

6. निष्कर्ष

भरत मुनि और अभिनवगुप्त जैसे महान आचार्यों ने कवि की भूमिका, गुणों और उसकी रचनात्मक प्रक्रिया पर गहन विचार व्यक्त किए हैं। उनके अनुसार, कवि का कार्य केवल शब्दों की सुंदरता का प्रदर्शन नहीं, बल्कि समाज को नैतिक और सांस्कृतिक रूप से मार्गदर्शन प्रदान करना है। इस प्रकार, कवि का काव्य एक माध्यम है, जिसके द्वारा वह समाज में सत्य, सौंदर्य, और रस की स्थापना करता है। अतः सारांश रूप में कहा जा सकता है की ब्रह्मा की विश्व सर्जना की भांति कवि के अन्तः स्फूर्त भावों का अभिव्यंजन भी असीम और अनंत है । कवि 'स्वात्मद्वारेण विश्वं तथा पश्चयन्' उक्ति को पूर्णतः चरितार्थ करता है । वह इस प्रकार से की कवि का अनुभव केवल उसके अहं का अनुभव नहीं रह जाता अपितु रस की चर्वणा से आस्वाद्य बनकर अपनी आत्मवाणी से विश्वव्यापक प्रतीति करने में समर्थ होता है।

---

[i] कविशब्दश्च, कवृवर्णने इत्यस्य धातो, काव्यकर्मणो रूपम्- काव्यमीमांसा अध्याय ३

[ii] यत् काव्यं लोकोत्तरवर्णनानिपुण कविकर्म – काव्यप्रकाश पृ॰ ९

[iii] अपूर्वं यद्वस्तु प्रथयति विना कारणकलां जगद्राग्वप्रख्यं निजरसभरात्सारयति च। क्रमात्प्रख्योपाख्याप्रसरसुभगं भासयति तत् सरस्वतत्यास्तत्त्वं कविसहृदयाख्यं विजयते।। - ध्वन्यालोकलोचन (मंगलाचारण)

[iv] " The meaning of a poem may be something larger than the author's conscious purpose and something remote from its origins. " - T.S ELIOT'S EMOTIVE THEORY OF POETRY,CHAPTER-2 page—30

[v] काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवेः पुरा। क्रोञ्चद्वन्द्वियोगोत्थ शोक श्लोकत्वमागतः॥ ध्वन्यालोक १/५

[vi] अतएव ते कवयो वर्णनायोगात् तेषाम् -लोचन ३/४३ पृ॰ ५८१

[vii] "एवं पितामहसदृशेन सर्वदा नाट्यवेदशरीररूपकनिर्माणे कविना भाव्यमिति प्रदर्श्य तत्र विभवयुक्तो विधेयनटजनश्च राजा प्रयोजयिता।"- अभिवनवभारती (भाग १) पृ॰ ५३

[viii] नमस्त्रैलोक्यनिर्माणकवये शम्भवे यतः।प्रतिक्षणं जगन्नाट्यप्रयोगरसिको जनः।। - अभिवनवभारती (भाग १) पृ॰ १७

[ix] तल्लिंगर्थानि नामानि कार्याणि कविभिः सदा । नाट्यशास्त्र १९/३०

[x] त्रिविधमं ह्यक्षरं कार्य कविभिर्नाट्यकाश्रयम्। ह्रस्व दीर्घ॑ प्लुतञ्चैव रसभावविभावकम्॥ नाट्यशास्त्र १७/११३

[xi] कवेः प्रयत्नान्नेतृणां युक्तानां विध्यपाश्रयात्।कल्प्यते हि फलप्राप्तिः समुत्कर्षात्फलस्य च।। - नाट्यशास्त्र – १९° ५
[xii] कवीनां काव्यविरचनविवेचनसामर्थ्यसमर्थनायावश्यमं काल्पनिकोऽपि विभाग आश्रयणीयः। - अभिनवभारती भाग-३ पृ° ३७६
[xiii] काव्ये निर्मातव्ये भूमिकल्पः शब्दच्छन्दोविधिः क्षेत्रपरिग्रहं वृत्तसमाश्रयमित्यादि विरचयन् भित्तिस्थानीयं लक्षणयोजनं चित्रकर्मप्रमिमलङ्कारगुणनिवेषनं गवाक्षवातायनादिदेषीयो दषरूपकविभागः उपयोगनिरूणाप्रख्या काक्वादिप्लुतिः। - अभिनवभारती (भाग-३) पृ° ३७२
[xiv] महाकवीनां पदवीमुपात्तामारुरुक्षताम्।- अभिनवभारती भाग ३ पृ° ३७३
[xv] कविनाङ्गानि कार्याणि सम्यक्तानि निबोधत॥ नाट्यशास्त्र – २१/५६
[xvi] कविगत साधारणीभूतसंविन्मूलश्च काव्यपुरःस्सरो नटव्यापारः । सैव च संवित परमार्थतो रसः । समाजिकस्य च तत्प्रतीत्या वशीकृत्य पश्चाद्पोधारबुध्या विभावादिप्रतीतिरीति । - अभिनवभारती ६/३६ पृ ° ५१५

[xvii] यतो रसबन्ध एव मुख्यः कविवयापारविषयः। ध्वन्यालोक लोचन ३/१८ पृ ३९९)
[xviii] तस्या विशेषो रसावेशवैशद्यसौंदर्य काव्यनिर्माणक्षमत्वम् - ध्वन्यालोकलोचन १/७ पृ° ७४
[xix] यथा बीजाद भवेद् वृक्षो वृक्षात् पुष्पं फलं यथा। तथा मूलं रसाः सर्वे तेभ्यो भावा व्यवस्थिताः॥ - नाट्यशास्त्र ६/७
[xx] बीजं यथा वृक्षमूलत्वेन स्थितं तथा रसाः । तन्मूला हि प्रीतिपूर्विका प्रयोजने नाट्ये काव्ये समाजिकधियि च व्युत्पत्तिरीति । मूलबीजस्थानीयः कविगतो रसः । कविर्हि सामाजिकतुल्य एव । - अभिनवभारती ६/३६ पृ ° ५१५
[xxi] प्रतिपतृन् प्रति सा प्रतिभा नानुनीयमाना अपितु तदावेशेन भासमानाः । ध्वन्यालोकलोचन पृ° १/६

[xxii] 'प्रतिभा अपूर्ववस्तु निर्माणक्षमाप्रज्ञाः' ध्वन्यालोकलोचन पृ° ९३
[xxiii] अपूर्व यद्वस्तु प्रथयति विना कारणकलां , जगद्भावप्रख्यं निजरसभरात्सारयति च।क्रमात्प्रख्याप्रसरसुभगं भासयति तत्, सरस्वत्यास्तत्वं कविसहृदयाख्यं विजयते ॥ लोचन 1/1)
[xxiv] यदुन्मीलनशक्त्यैव विश्वमुन्मीलति शाणात् । स्वात्मायतनविश्रान्तां तां वन्दे प्रतिभां शिवाम् ॥ ध्वन्यालोकलोचन प्रथम उद्योत पृ ° १७२
[xxv] शक्तिः प्रतिभानं वर्णनीयवस्तुविषयनूतनोल्लेखशालित्वम् । ध्वन्यालोकलोचन ३/५ पृ° ३४६
[xxvi] कवेरपि स्वहृदयायतनसततोदितप्रतिभाभिधानपरवाग्देवतानुग्रहोत्थितविचित्रपूर्वार्थ निर्माणशक्तिशालिनः प्रजापतिरेव कामजनितः । - अभिनवभारती अध्याय प्रथम वृत्ति पृ° ४२ ।